

इस्लाम धर्म संसार के परित्याग की, विरक्ति की ओर ले जाने वाला धर्म नहीं; तर्क दुनिया या रहबानियत का संदेश देने वाला नहीं। वह कर्म का संदेश देता है, संयम से जीवन व्यतीत करने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस लोक के साथ परलोक पर भी उसकी दृष्टि रहती है और परलोक को इहलोक पर प्राथमिकता देता है। मनुष्य कर्म करने में पूर्णतः स्वतन्त्र है, उसे अपने कर्मों का फल भी निश्चित रूप में भोगना है और 'रोज़े-मशहर' में—'अन्तिम निर्णय' के दिन उसे अल्लाह के दरबार में हाजिर होकर अपने कर्मों का हिसाब देना होता है—“जो व्यक्ति सत्कर्म करेगा चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बशर्ते कि वह मोमिन हो, उसे हम संसार में पवित्र जीवन व्यतीत करायेंगे और परलोक में ऐसे व्यक्तियों को उनके प्रतिकार, पुण्य, उत्तम कर्मों के अनुसार प्रदान किये जायेंगे।”^१

जैसा कर्म वैसा फल मिलेगा। स्वर्ग और नरक का—जन्नत व दोज़ख का निर्णय लोगों के हक़ में कर्मों के आधार पर ही होगा—डॉ० इक़बाल ने ठीक फरमाया है:—

अमल से जिंदगी बनती है जन्नत भी जहन्नूम भी,
यह खाकी अपनी फ़ितरत में, न नूरी है न नारी है।

कुरआन में बार-बार यह घोषणा की गई है—“व बशिरिल्लज़ीना आमानू व आमिलुस्सुअलिहाति अन्नालाहुम जन्नातिन तजरी मिन-तहतिहल अन्हार।”^२

ए पैगम्बर ! खुशख़बरी सुना दीजिए उन लोगों को जो ईमान लाए और काम किये अच्छे, इस बात की कि निःसंदेह उनके लिए जन्नतें (स्वर्ग) हैं जिनके नीचे नहरें बहती हैं।

१—कुरआन, नहल—१२५

२—अलबक़र, २५

लेकिन कर्मों का दारोमदार नीयत पर है। जो जैसी नीयत करेगा उसे वैसा ही मिलेगा। पैगम्बरे-इस्लाम का फ़रमाना है—“कर्म का दारोमदार नीयत पर है और प्रत्येक आदमी को वही मिलेगा जिसकी उसने नीयत की।” अल्लाह कण-भर बुराई, कण-भर भलाई को देखने वाला है। ‘सूरे अलजलजाल’ में अल्लाह ने फ़रमाया है—“जो कोई एक कण समान नेकी करेगा, उसे देखेगा और जो कण समान कुकर्म करेगा, उसे देखेगा”। ‘सूरे अलहज’ में उल्लेख है—“वअबुदु रब्बाकुम वफ़अलू ला अल्लाकुम तुफ़लिहून”^१ अर्थात् अपने रब की बंदगी करो और भलाई के कर्म करो ताकि हित-कल्याण प्राप्त करो। इस प्रकार कुरआन में तथा अन्तिम पैगम्बर मुहम्मद साहब (सन् ५७१-६३२) ने बार-बार सत्कर्म करने का आदेश दिया है और साथ ही उस व्यक्ति को श्रेष्ठ माना है जो संयमी है—

“इन्ना अकरामाकुम इन्दल्लाहि अतक्काकुम” (अलहजारात, १२/१२) तुम में सर्वाधिक आदरणीय वह है जो तुम में सबसे अधिक संयमी है। इस प्रकार नेक कर्म करना तथा संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना कुरआन का संदेश है और इस्लाम धर्म का एक बुनियादी सिद्धान्त है। ईमान वालों में सबसे अच्छा उस व्यक्ति का ईमान है जिसका आचरण, व्यवहार सबसे अच्छा हो, और जो अपने घरवालों के साथ भी सद्व्यवहार करने में उत्तम हो। अल्लाह ने उस व्यक्ति को नापसन्द किया है जो संसार में दंगा-फ़साद पैदा करता है। कुरआन में कहा गया है—“वल्लाहु ला युहिब्बुल मुफ़सिदीन” (अल-माइदा, ६४) और अल्लाह फ़साद करने वालों से प्रेम नहीं करता ‘ला इकराहा फ़िदीन’ (अल-बक्कर) दीन, धर्म के मामले में कोई ज़ोर-जबरदस्ती नहीं। इस प्रकार यहाँ अनावश्यक हिंसा को मान्यता भी नहीं दी गई। इस्लाम बल का नहीं, शान्ति का धर्म है। ‘इस्लाम’ शब्द का अर्थ है अमन व सलामती। यह शान्ति, सुरक्षा प्रदान करने वाला धर्म है और इसमें किसी एक जाति या सम्प्रदाय के लिए मार्गदर्शन नहीं, वरन् सकल मानवजाति के लिए मार्गदर्शन है। यहाँ रंगों-नस्ल का कोई भेदभाव नहीं। नेक अमल और तक्वा या संयम पर यहाँ विशेष बल दिया गया है। नेक कर्म, सत्कर्म को यहाँ व्यापक रूप में रेखांकित किया गया है। कुरआन में फ़रमाया गया है—

“नेकी यह नहीं है कि तुमने अपने मुख पूर्व की ओर कर लिए या पश्चिम की ओर, वरन् नेकी यह है कि मनुष्य अल्लाह को, क़यामत या अन्तिम दिन को, फ़रिश्तों (देवदूतों) को, अल्लाह द्वारा अवतरित पुस्तक को, और उसके पैगम्बरों को हृदय से—सच्चे मन से स्वीकार करे और अल्लाह के प्रेम में अपना प्रिय धन सम्बन्धियों, अनाथों, याचकों, भिक्षुकों पर, सहायता के लिए हाथ फैलाने

वालों पर और दासों की—बंधकों की मुक्ति पर खर्च करे, नमाज़ कायम करे, ज़कात (वार्षिक लाभ का २½ प्रतिशत) दे। और नेक वे लोग हैं जो प्रण करें, वायदा करें तो उसे पूर्ण करें, और तंगी एवं मुसीबत के समय में, सत्य और असत्य के संघर्ष में सब्र करें। यह है सत्यवादी लोग, और यही लोग मुत्तकी हैं, संयमी हैं।^१”

‘तक़वा’ क्या है ? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। कुरआन में तक़वा करने वाले को, संयमी को इस रूप में व्यंजित किया गया है—“जो अदृश्य या ग़ैब पर विश्वास करते हैं, ईमान लाते हैं, नमाज़ कायम करते हैं—नियमित रूप में नमाज़ पढ़ते हैं, और जो अन्न हमने उनको दिया है उसमें से व्यय करते हैं, जो किताब (कुरआन) तुम पर उतारी गई है और जो किताबें तुमसे पहले उतारी गई हैं, उन सब पर ईमान लाते हैं और आखिरत पर विश्वास करते हैं ऐसे लोग अपने रब की तरफ से सद्मार्ग पर हैं और वही पुण्य, लाभ प्राप्त करने वाले हैं।” ‘सूरे आले-इमरान’ में फ़रमाया गया है—“जो प्रत्येक दशा में अपना धन खर्च करते हैं; चाहे अच्छी दशा में हों या चाहे दुर्दशा में हों, जो क्रोध को पी जाते हैं और दूसरों के दोष क्षमा कर देते हैं, ऐसे नेक लोग अल्लाह को बहुत पसन्द हैं और जिनकी दशा यह है कि यदि कोई अश्लील कार्य उनसे हो जाये या किसी गुनाह को करके अपने ऊपर अत्याचार कर बैठते हैं तो अल्लाह उन्हें याद आता है और उससे वे अपने दोषों की क्षमा चाहते हैं और अल्लाह के अतिरिक्त और कौन है जो गुनाह क्षमा कर सकता है ? और वह कभी जानबूझकर अपने किये पर आग्रह नहीं करते। ऐसे लोगों का प्रत्युपकार उनके रब के पास यह है कि वह उन्हें क्षमा कर देगा और ऐसे उपवनों में उन्हें दाखिल करेगा, जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और वहाँ वह सदैव रहेंगे।” क्या अच्छा बदला है नेक, सत्कर्म करने वालों के लिए।

इस्लाम धर्म में कर्मों के स्वरूप पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—

(१) ऐसे कर्म जिनका समाज से सम्बन्ध है, उन्हें लौकिक कर्म कह सकते हैं। मनुष्य परस्पर अन्य मनुष्यों से जो व्यवहार करता है वे कर्म इसी श्रेणी में आयेंगे।

(२) आध्यात्मिक कर्म वे हैं जिनका संबंध नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात से है। मनुष्य को अल्लाह के अतिरिक्त किसी की पूजा-इबादत नहीं करनी चाहिए, अल्लाह के अतिरिक्त कोई आराध्य नहीं, यह इस्लाम धर्म का प्रमुख सिद्धान्त है और इस पर अमल करना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है। इसी को

‘तौहीद’ कहते हैं और इसी में इस्लाम धर्म का मूलमंत्र (कलमा) समाहित है—
“ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह ।” अर्थात् अल्लाह के सिवाय कोई
पूज्य नहीं—इबादत के योग्य नहीं, मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं—संदेश-
वाहक हैं ।

जब हम सामाजिक कर्मों की ओर ध्यान देते हैं तो निम्न बातें सामने
आती हैं । इन्हें भी अल्लाह का आदेश मानना चाहिए—

(१) माता-पिता के साथ, सद्व्यवहार करो; यदि तुम्हारे पास उनमें
से कोई एक या दोनों वृद्ध होकर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो, न उन्हें झिड़क
कर उत्तर दो, वरन् उनसे सादर बातें करो, नम्रता और दया के साथ उनके
सामने झुक कर रहो और दुआ करो—परवरदिगार ! उन पर दया-कृपा कर,
जिस तरह प्रेम, दया, करुणा के साथ उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है ।

(२) अपने सम्बन्धियों को, याचकों को, अनार्यों को, दीन-निर्धन को
अपना हक्क—अधिकार दो ।

(३) मितव्ययी बनो, अधिक या फ़जूल व्यय करने वाले शैतान के भाई
हैं और शैतान ने अपने परमात्मा का एहसान नहीं माना ।

(४) बलात्कार के पास भी न फटको, यह बहुत ही बुरा कर्म है और
बहुत ही बुरा मार्ग है ।

(५) अनाथ के माल-सम्पत्ति के पास मत जाओ, एक उत्तम अच्छा
मार्ग अपनाओ जब तक कि वह वयस्कता को प्राप्त न हो ।

(६) प्रण या वचन की पाबन्दी करो, निःसंदेह वचन के बारे में तुम्हें
उत्तरदायी होना पड़ेगा ।

(७) पृथ्वी पर अकड़ कर मत चलो, न तुम पृथ्वी को विदीर्ण कर
सकते हो, न पर्वतों की उच्चता तक पहुँच सकते हो ।

(८) न तो अपना हाथ गरदन से बांध कर रखो और न उसे बिल्कुल
ही खुला छोड़ दो कि भर्त्सना, निन्दा, विवशता का शिकार बनो । तेरा रब
जिसके लिए चाहता है, रोजी का विस्तार करता है और जिसके लिए चाहता है
उसे सीमित कर देता है ।

(९) अपनी सन्तान की दरिद्रता के कारण हत्या न करो, अल्लाह
सबको अन्न देने वाला है, उनकी हत्या एक बड़ा अपराध है ।

(१०) किसी को नाहक्क क़त्ल मत करो ।

(११) किसी ऐसी वस्तु का अनुकरण मत करो जिसका तुम्हें ज्ञान न हो । निःसंदेह आँख, नाक, कान, हाथ, दिल—सब की पूछ-गछ होनी है ।

(१२) मजदूर की मजदूरी उसका श्रम सूखने से पहले दे दो ।

(१३) अपने नौकर के साथ समानता का व्यवहार करो; जो स्वयं खाओ वही उसे खिलाओ, जैसा स्वयं पहनो वैसा उसे भी पहनाओ ।

(१४) नाप कर दो तो पूरा भर कर दो, तोल कर दो तो पूरा, ठीक तराजू से तोल कर दो ।

(१५) अमानत में खियानत—बेईमानी मत करो । कुरआन में कहा गया है—

मन अमिला सालिहन मिन जिकरिन अब उन्सा व हुवा मुमिनुन फ़ला नुहयीयन्नाहू हयातन तय्यिब। वला नजज़ियन्नाहुम अजराहुम बिअहसनि माकानू यअमालून ।^१

अर्थात् व्यक्ति जो नेक अमल करेगा चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बशर्ते कि हो वह मोमिन (ईमान, विश्वास रखने वाला) उसे हम संसार में पवित्र जीवन व्यतीत करायेंगे और आखिरत में—परलोक में ऐसे लोगों को उनके उत्तम कर्मों के अनुसार प्रत्युपकार या प्रतिफल प्रदान किया जायेगा ।

‘सूरे कहफ़’ में अंकित है—“इन्नल्लजीना आमनू व अमिलुस्सालिहाति इन्ना ला नुज़ीउ अजरामन अहसना अमाला”—जो ईमान लायें और नेक काम करें तो निःसंदेह हम सत्कर्म करने वालों के फल नष्ट नहीं किया करते ।

एक सच्चा मुसलमान यह आस्था रखता है कि मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने के लिए अल्लाह के निर्देशन में कर्म करना चाहिए; मुक्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य को आस्था के साथ कर्मशील रहना होगा । यह आस्था और कर्म दोनों का संयोग आवश्यक है । जीवन को आस्थामय बनाना होगा, बिना आस्था के कर्म और बिना कर्म के आस्था बेकार है । केवल कर्म, केवल आस्था का प्रश्रय लेकर मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती । इस्लाम में अन्धानुकरण को पसंद नहीं किया गया । ईमान के पाँच तत्त्व हैं—(१) अल्लाह (२) पैग़म्बरों की परम्परा (३) धर्म ग्रन्थ (कुरआन, बाइबिल आदि) (४) देवदूत (५) आखिरत या परलोक । इन पर विश्वास, आस्था रखने पर ही एक व्यक्ति मुसलमान माना जा सकता है ।

जहाँ तक धार्मिक या आध्यात्मिक कर्मों का सम्बन्ध है उन्हें 'हक्कुल्लाह' कहा जाता है। रोज़ा, नमाज़ आदि इन्हीं में सम्मिलित हैं। इस्लाम धर्म के अनुयायियों पर यह फ़र्ज़ है कि (१) वे दिन में पाँच समय नमाज़ अदा करें, (२) साल में एक महीने तक (रमज़ान के महीने में ही) रोज़ा रखें, (३) अर्थ-सम्पन्न हों तो जीवन में एक बार अवश्य 'हज़' करें, (४) अपनी वार्षिक आय का २½ प्रतिशत दान करें। इन आवश्यक कर्मों के द्वारा आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो जाती है। ये इस्लाम के चार प्रमुख कर्म-स्तम्भ हैं।

खुदा हमारी नमाज़ का भूखा नहीं, नमाज़ के द्वारा मनुष्य के जीवन में, व्यवहार में परिवर्तन होना आवश्यक है। नमाज़ द्वारा निम्न बातें जीवन में आनी चाहिए—(१) इसके द्वारा अल्लाह के अस्तित्व और उसके गुणों के विषय में मनुष्य की आस्था दृढ़ होती है। आस्था प्राणों में घुलमिल जाती है, आत्मा का एक अंग बन जाती है। (२) नमाज़ ईमान को जीवित, ताज़ा रखती है। (३) इसके द्वारा मनुष्य की महानता, उच्चाचरण, श्रेष्ठता, सदाचार का विकास, सौंदर्य की तथा प्रकृति की आशा-उमंगों को पूरा करने में मनुष्य को सहायता करती है। (४) नमाज़ हृदय को पवित्र करती है, बुद्धि का विकास करती है, अन्तरात्मा को सचेत तथा जीवित रखती है, आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है। (५) नमाज़ के द्वारा मनुष्य की अच्छाईयाँ प्रकट होती हैं और अशुभ, अपवित्र बातें समाप्त हो जाती हैं।

रोज़ा मनुष्य को अल्लाह से प्रेम करना सिखाता है क्योंकि रोज़ा केवल अल्लाह की खुशनुदी—प्रसन्नता के लिए रखा जाता है। इसके द्वारा अल्लाह की सन्निकटता का अनुभव होता है। यह मनुष्य की आत्मा को पवित्रता प्रदान करता है, उसे संतुलित जीवन व्यतीत करने का पाठ सिखाता है, सब्र-सन्तोष तथा निःस्वार्थता का भाव उत्पन्न करता है। इच्छाओं का, इन्द्रियों का दमन करना, उन्हें नियंत्रित करना आता है। भूख-प्यास की अनुभूति से सहानुभूति, दया, करुणा के भाव मनुष्य में उत्पन्न होते हैं। इसके द्वारा मनुष्य अनुशासनमय जीवन व्यतीत करता है, सामाजिकता की भावना उत्पन्न होती है।

'ज़कात' इस्लाम का प्रमुख स्तम्भ है। इस शब्द का भाव तो 'पावनता' है, लेकिन व्यवहार में वार्षिक दान—चाहे रुपयों-पैसों के रूप में हो, चाहे वस्तुओं के—पदार्थों के रूप में हो, गरीबों को देना है। लेकिन इसमें दानशीलता के साथ खुदा-प्रेम, आध्यात्मिक उद्देश्य, नैतिक भावना भी शाकिल है। यह स्वेच्छा से दिया जाता है, कोई सरकारी दबाव नहीं जैसे आयकर में है। मानव-प्रेम की यह एक सच्ची अभिव्यक्ति है। वार्षिक आय का कम से कम ढाई प्रतिशत दान देना, ख़ैरात करना अनिवार्य है। ज़कात हक़दार को देनी चाहिए—जिसके पास अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ भी न हो। अनाथ, विकलांग

को जकात देने में प्राथमिकता देनी चाहिए । जकात देने में गर्व या प्रदर्शन नहीं करना चाहिए ।

‘हज’ इस्लाम का अंतिम प्रमुख स्तम्भ है । हज प्रत्येक मुसलमान स्त्री-पुरुष पर फ़र्ज है जिसके पास आर्थिक, शारीरिक, मानसिक सम्पन्नता-समर्थता है । इसे इस्लाम धर्म का सर्वोत्तम और महान् सम्मेलन समझना चाहिए, अमन व शान्ति की अन्तर्राष्ट्रीय कांफ़ेन्स है । इसके द्वारा इस्लाम का सार्वभौम स्वरूप उभर कर सामने आता है । मानव-प्रेम का, समानता का, विश्व-बन्धुता का इससे उत्तम रूप अन्यत्र नहीं मिलता । हज के द्वारा मक्का, मदीना आदि की यात्रा करके हाजी लोग उस युग का भी स्मरण करते हैं जिस युग में हज़रत इब्राहीम ने मक्का का निर्माण किया था । पैग़म्बर मुहम्मद साहब ने जीवन व्यतीत किया था, सकल समाज में आध्यात्मिकता की ज्योति जलाई थी ।

इस्लाम धर्म के अनुसार मनुष्य को अपने कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्रता है, उसे मार्ग दर्शाया गया है, अल्लाह की किताब कुरआन के द्वारा और पैग़म्बर मुहम्मद साहब के जीवन के द्वारा । उसे अच्छे-बुरे की सज़ा अवश्य मिलेगी । खुदा की ओर से नियुक्त फ़रिश्ते उसके प्रत्येक कर्म का लेखा-जोखा दर्ज करते रहते हैं और क़यामत के दिन, योमे-महशर में उसके कर्मों का विवरण—‘एमालनामा’ उसके हाथ में होगा और तदनुसार उसे स्वर्ग, नरक में डाला जायगा ; उसे कर्मों का पूरा-पूरा बदला दिया जायगा । यह अवश्य स्मरणीय है कि यदि कोई अपने किए पर पश्चात्ताप करे, क्षमा मांगे और वैसा गुनाह न करे तो अल्लाह उसे क्षमा कर देता है क्योंकि वह ‘रहीम’ और ‘रहमान’ है, वह दयानिधि है, कृपासागर है । यों अल्लाह सर्वशक्तिमान है, उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता । मनुष्य को अपने-आपको अल्लाह के अधीन समझकर उसकी खुशनूदी के लिए कर्म करने चाहिए और उस मनुष्य को सर्व-श्रेष्ठ मनुष्य कुरआन व इस्लाम की दृष्टि में समझा जायगा जिसके कर्म उत्तम हैं, जिसका आचरण श्रेष्ठ है । “इन्नलाहा ला युगैयिरुमा बि क्रौमिन हत्ता युगैयिरुमा बि अनफुसिहिम ।”

निःसंदेह अल्लाह किसी जाति की दशा को उस समय तक परिवर्तित नहीं करता जब तक कि वह अपनी दशा को नहीं परिवर्तित करती ।

